सोलह भावना एवं सम्यक् ध्यान शतक
ज्ञानवर्धन प्रतियोगिता
भाद्रपद माह 2022
तीर्थोदय काव्य एवं सम्यक् ध्यान शतक का स्वाध्याय
सोलहकारण पर्व में करें विशेष धर्मध्यान एवं
जीतें आकर्षक पुरूस्कार ...बनें प्रतियोगिता के विजेता
यह तीर्थोदय काव्य एवं सम्यक् ध्यान शतक सिद्धांत भूषण विशेष
पदवी हेतु स्वीकृत किया गया है ..इस कोर्स को अवश्य करें
प्रतियोगिता में भाग लेने हेतु 9174843674

सम्यक् ध्यान शतक

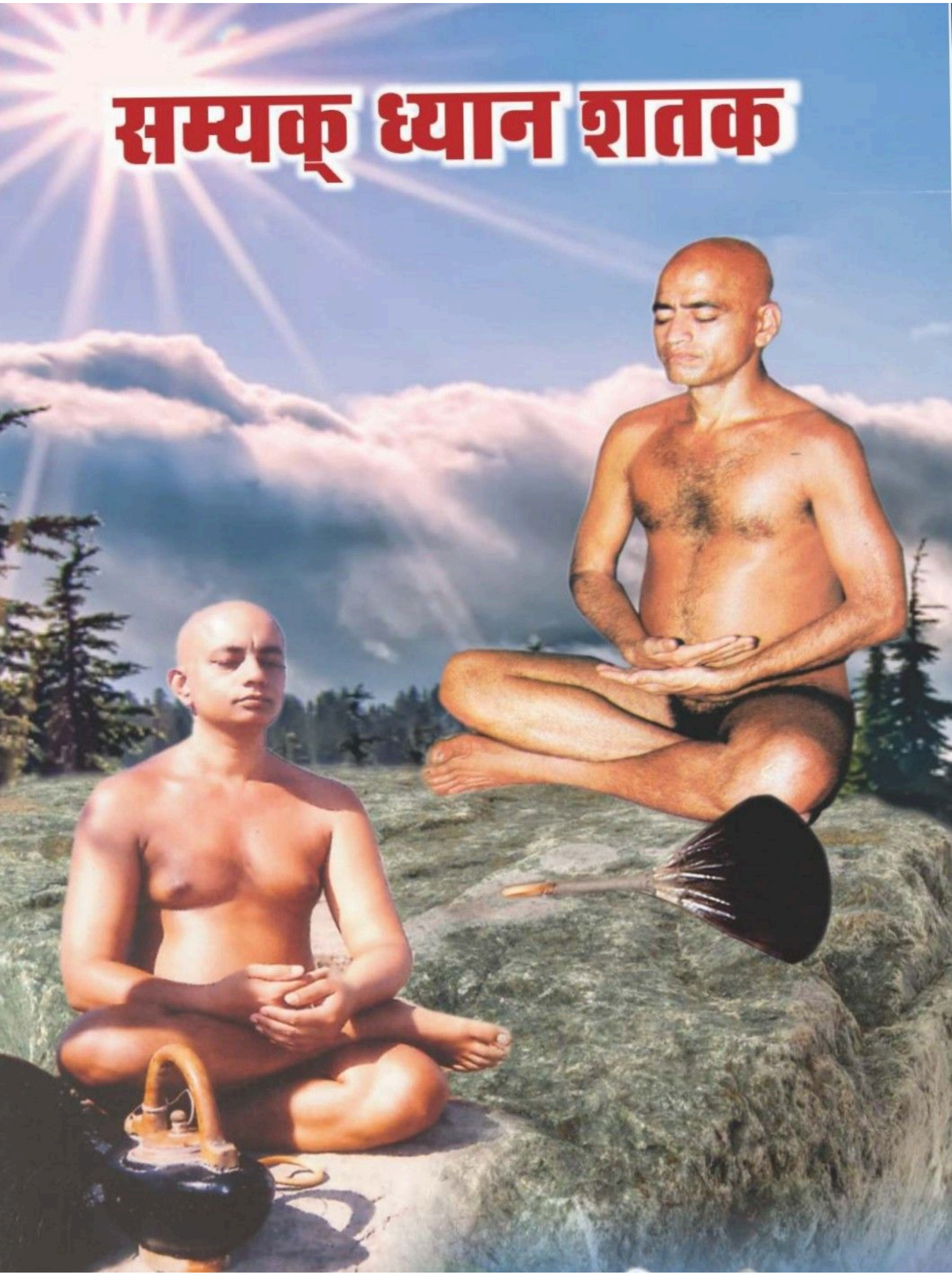

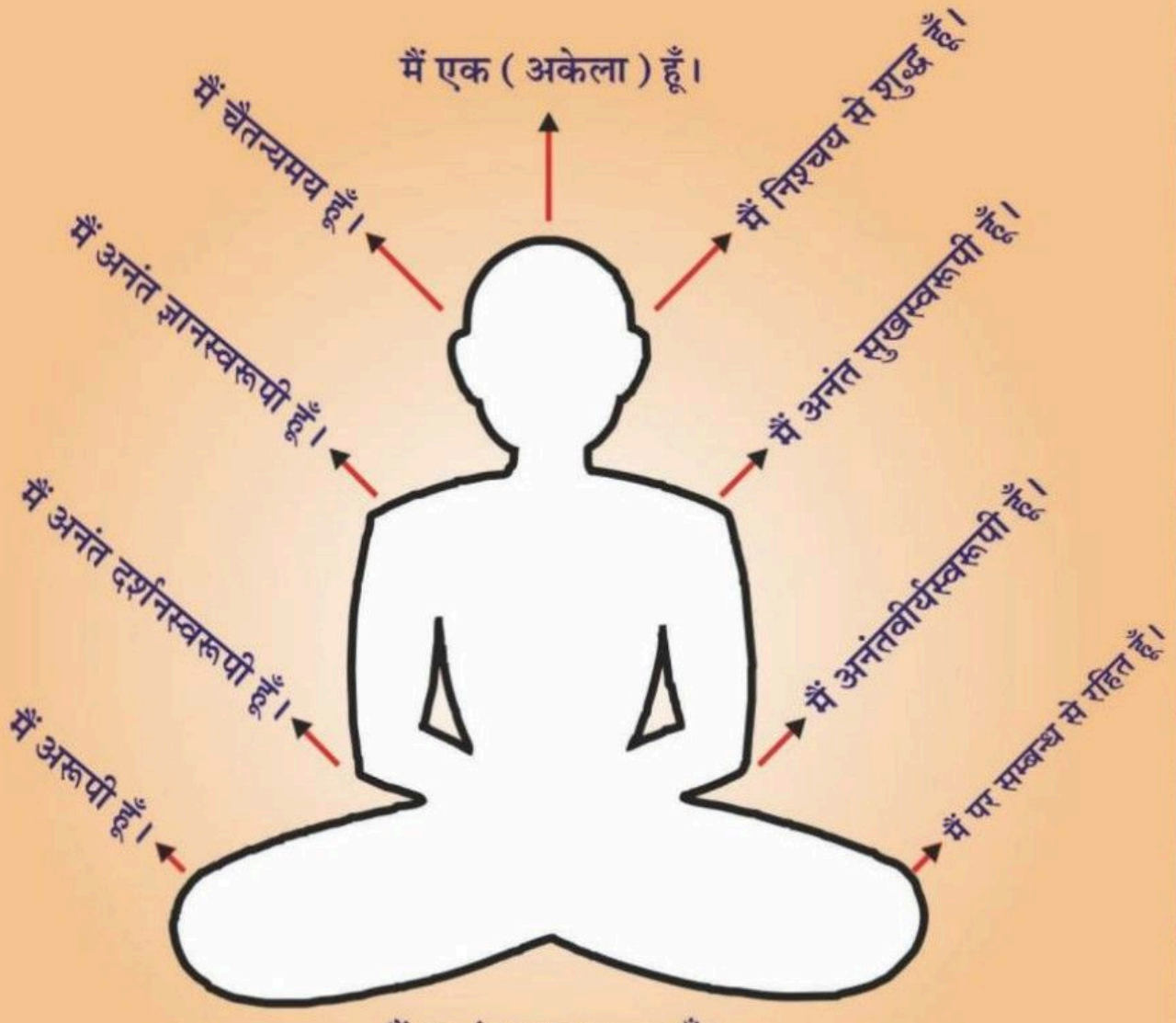
मैं एक (अकेला) हूँ।
मैं चैतन्यमय हूँ।
मैं निश्चय से शुद्ध हूँ।
मैं अनंत ज्ञानस्वरूपी हूँ।
मैं अनंत सुखस्वरूपी हूँ।
मैं अनंत दर्शनस्वरूपी हूँ।
मैं अनंतवीर्यस्वरूपी हूँ।
मैं अरूपी हूँ।
मैं पर सम्बन्ध से रहित हूँ।
मैं आनंद का भण्डार हूँ।

तत्त्वधारणा

सम्यक्-ध्यान व ध्यान की प्रक्रिया

आचार्यश्री आर्जवसागर

'ध्ये चिंतायाम्' धातु से ध्यान शब्द निष्पन्न होता है। जो चिंतवन, मनन करने के अर्थ में है। तत्त्वार्थसूत्र में एकाग्र चिंता निरोध के सूत्र में एक का अर्थ केवल अर्थात् आत्मा और अग्र पद का अर्थ मुख है जो एक अग्र होता है वह एकाग्र है। निरोध का अर्थ नियंत्रण या रोकना कहलाता है। अन्य पदार्थ में अमुख अर्थात् हटकर या निर्वृत्त होकर एक आत्म पदार्थ में चिंतवन का स्थिर रहना सम्यक्-ध्यान कहलाता है। शुक्लध्यान रूपी उत्कृष्ट ध्यान की अपेक्षा अग्र का अर्थ प्रथम या मुख्य होता है। जिससे ध्याता को सभी पदार्थों में प्रथम अपनी आत्मा ही होती है और तत्त्वों में अग्रण्य होने से भी अग्र शब्द से आत्मा का स्मरण किया गया है। तो केवल आत्मा के ध्यान में चित्त-वृत्ति का नियंत्रण होना उत्तम ध्यान है।

संसार में जीव कर्म से बध्य होकर अनादिकाल से चतुर्गति परिभ्रमण कर रहा है। वह जीव जब वीतरागी देवाधिदेव अरिहन्त भगवान, निर्ग्रंथ-गुरु और समीचीन शास्त्र को निमित्त बनाकर इन पर अगाढ़ भक्ति धारण कर और इनके द्वारा उपदिष्ट मार्ग पर अटूट श्रद्धा धारण कर आत्मा के सच्चे स्वरूप को पहचान कर उसकी श्रद्धा करके निर्ग्रन्थ बन उसी में लीन होता है तो संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

मुक्ति के साधन सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र हैं। जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। जीव में अजीव रूप कर्म का आना आश्रव है और कर्म का जीव के साथ बँध जाना बंध है। ये आश्रव, बन्ध ही संसार के प्रधान कारण हैं और संसार के अभाव रूप मोक्ष के प्रधान कारण संवर और निर्जरा हैं। संवर और निर्जरा का प्रधान कारण सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र हैं और सम्यक्चारित्र में तप भी गर्भित है और तप बाह्य और अभ्यन्तर के भेद से दो प्रकार का है। अभ्यन्तर तप के भेदों में एक भेद ध्यान है। तत्त्वार्थ सूत्र में **'आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि'** सूत्र के द्वारा ध्यान चार प्रकार का बतलाया गया है। अगले सूत्र में **'परे मोक्ष हेतु'** अर्थात् बाद

वाले धर्म, और शुक्ल ध्यान मोक्ष के कारण हैं। एतदर्थ पारिशेष न्याय से **'पूर्वे संसार हेतु'** अर्थात् पूर्व कथित जो आर्त्त, रौद्र ध्यान हैं वे संसार के कारण हैं स्वयमेव सिद्ध हो जाता है। इसी कथन से यह भी अर्थ स्पष्ट होता है कि जो साक्षात् और परम्परा से मोक्ष के कारण रूप धर्म और शुक्लध्यान हैं वे शुभ रूप ध्यान हैं और संसार के कारण रूप जो आर्त्त, रौद्र ध्यान हैं वे अशुभ रूप ध्यान हैं यदि कदाचित् कोई भव्य कहे कि मुझे ध्यान का अभ्यास करना है; तो कहा जावेगा कि संसार के प्रत्येक प्राणी को अशुभ ध्यान का अभ्यास अनादिकाल से चल ही रहा है, परन्तु शुभ-ध्यानों के लिए विशिष्ट पुरुषार्थ रूप सम्यग्दर्शन पूर्वक ज्ञान, चारित्र अथवा संवर, निर्जरा के साधन रूप गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषह-जय और चारित्र की अनिवार्यता होती है।

परिग्रहवान मोही संसार के सर्व प्राणी चिंताओं में उलझे हुये हैं। जिनके हिय में आकुलता-व्याकुलतामय परिणामों से आर्त्त, रौद्र ध्यानों की निरन्तरता बनी रहती है और जब तक तत्त्व-चिंतन के साथ धर्मध्यान नहीं होता तब तक चित्त-वृत्ति के निरोध के साथ समीचीन अर्थात् सम्यक्ध्यान सम्भव नहीं। समाधि-तन्त्र में कहा है कि-जिस ध्यानी साधक का मन रूपी जल राग-द्वेष आदि लहरों से चंचल (चलायमान) नहीं होता वही आत्मा के यथार्थ स्वरूप को देखता है। अन्य जन उस आत्म-तत्त्व का दर्श नहीं कर सकते।

श्लोक: रागद्वेषादि कल्लोलैरलौलं यन्मनो जलं।
स पश्यत्यात्मनस्तत्त्वं, तत्तत्त्वं नेतरो जनं॥ 35॥

– समाधितन्त्र

कितने ही दार्शनिक यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि इन आठों को योग का अंग मानते हैं और कोई दार्शनिक यम, नियम को छोड़कर मात्र छह को योग का अंग मानते हैं। शुभचन्द्राचार्य ने कहा है कि उत्साह, निश्चय, धैर्य, संतोष, तत्त्व-निर्णय और जनपद त्याग इन छः से मुनि की योगों की सिद्धि होती है। और भी कहा है कि गुरु -उपदेश, उपदेश पर भक्ति, दृढ़ श्रद्धा, तत्त्व चिंतन और मन की स्थिरता ये सम्यक्-ध्यान के प्रधान साधन हैं। योग के अष्ठ अंगों का समीचीन अर्थ ध्यातव्य है कि -

1. यम :- अहिंसादि व्रतों का जीवन पर्यन्त धारण करना यम है।

2. नियम :- देवपूजा आदि नियत कालिक षट्-कर्म और नियत कालिक भोगोपभोग-परिमाण का नियमन करना नियम है।

3. आसन :- निश्चल और दृढ़ आसन जैसे-पद्मासन, अर्ध पद्मासन, खड्गासन इत्यादिक को आसन माना जाता है। ज्ञातव्य रहे कि आसनों के साथ खड्गासन में खड़े व्यक्ति के पैरों की एड़ियों के बीच चार अंगुल का अंतर हो और दोनों अंगूठों के बीच कम-से-कम चार या अधिक-से-अधिक बारह अंगुल का अन्तर हो। पद्मासन में बैठते समय पहले बायाँ फिर दायाँ पैर जंघा पर हो तथा दोनों पञ्जों के बीच हाथ पर हाथ रखते हुए बाँया फिर दाहिना हाथ हो। रीढ़ और मुख सीधा, दृष्टि (नजर) नाशाग्र की सीध में दूर जाती हो।

4. प्राणायाम :- पूरक, कुम्भक और रेचक इनके द्वारा वायु के संचार से प्राणायाम किया जाता है। वायु का अन्दर ग्रहण पूरक है। वायु का उदर में धारण कुम्भक और बहिर्गमन रेचक कहलाता है।

5. प्रत्याहार :- भोग विषयों से चित्त का निरोध हो जाने पर इन्द्रियों को अपने वश में करके जो स्वाधीन अवस्था की प्राप्ति करना प्रत्याहार कहलाता है।

6. धारणा :- चित्त को नाभिमण्डल, हृदय-कमल, ओष्ठ, नासिका, ललाट और सिर आदि में अथवा पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल और तत्त्व-धारणा का आलम्बन लेकर एकाग्रता में लीन होकर निराकुल अवस्था को प्राप्त करना धारणा कहलाता है।

7. ध्यान :- एक ही तत्त्व में स्थिरता पूर्वक जो चिंतन किया जाता है उसका नाम ध्यान है।

8. समाधि :- जहाँ ध्यान, ध्याता, ध्येय इन विकल्पों से रहित आत्म-तल्लीनता रूप शून्य के समान अर्थ प्रतिभास रूप अवस्था आती है उसे निर्विकल्प- समाधि कहा जाता है।

जैन-दर्शन में इसे निर्ग्रन्थों के जीवन में निर्विकल्प-समाधि कहा जाता है।

जिसे शुद्धोपयोग की उत्कृष्ट अवस्था या शुक्ल-ध्यान रूप से इंगित किया जाता है।

विद्वानों ने धर्म-ध्यान के पश्चात् प्राणायाम की व्याख्या करते हुए प्रथमतः यह निर्देशित किया गया है कि अपने सिद्धान्त का भले प्रकार निर्णय कर लेने वाले मुनियों ने ध्यान की सिद्धि के निमित्त मन की स्थिरता के लिए प्राणायाम की प्रशंसा की है। इसलिए बुद्धिमान भव्य जनों को उसे प्राप्त करना चाहिए क्योंकि इसके बिना मन पर विजय प्राप्त करना शक्य नहीं है। आचार्यों ने प्रत्याहार के लिए समाधि सिद्धि हेतु नियामक रूप से प्रशंसनीय बतलाया है। ज्ञानार्णव शास्त्र में शुभचन्द्राचार्य कहते हैं कि -

निःसंगः संवृतस्वान्तः कूर्मवृत्संवृतेन्द्रियः।
यमी समत्वमापन्नो ध्यानतन्त्रे स्थिरी भवेत्॥ 1457॥

अर्थात् जो मुनि परिग्रह से निर्ममत्व हो चुका है जिसका मन सावद्य प्रवृत्ति से रहित है। तथा जिसकी इन्द्रियाँ कछुए के समान संकुचित हैं स्वाधीन हो चुकी हैं वह समता-भाव को प्राप्त होता हुआ ध्यान की सिद्धि में दृढ़ होता है। तदुपरान्त प्रत्याहार की महिमा प्राप्त आत्मा के लिए प्राणायाम की आवश्यकता नहीं क्योंकि प्राणायाम से अपने प्राण या शरीर बाधित होते हैं।

सम्यक् समाधि सिद्धयर्थं, प्रत्याहारः प्रशस्यते।
प्राणायामेन विक्षिप्तं मनः स्वास्थ्यं न विन्दति॥ 1459॥
पूरणे, कुम्भने चैव तथा श्ववसननिर्गमे।
व्याग्रीभवन्ति चेतोसि क्लिश्यमानानि वायुभिः॥ 1465॥

- ज्ञानार्णव

अर्थात् प्राणायाम को अस्वस्थ-कर कष्टप्रद व मुक्ति की प्राप्ति में बाधक कहा गया है। ध्यान का अधिकारी कौन होता है? इसका वर्णन करते हुए आचार्य कहते हैं कि -

विरज्य कामभोगेषु विमुच्य वपुषि स्पृहाम्।
निर्ममत्वं यदि प्राप्तस्तदा ध्यातासि नान्यथा॥ 269॥

- ज्ञानार्णव

अर्थात् यदि तू कामभोगों से विरक्त होकर शरीर के विषय में निस्पृह होता हुआ निर्ममता को प्राप्त हो चुका है तो ध्यान का अधिकारी हो सकता है अन्यथा नहीं।

सम्यक्ध्यान की प्रसिद्धि हेतु सुयोग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का होना अनिवार्य है।

सुयोग्य द्रव्य :- भव्य आत्मा स्वयं ही आधार, ध्याता और साध्य रूप जीव द्रव्य कहलाता है। स्वस्थ शरीर, श्रेष्ठ-संहनन, पद्मासन, सिद्धासन, खड्गासन आदि आसन और सात्विक, शुद्ध, प्रासुक आहार ये सब अजीव द्रव्य कहलाते हैं।

सुयोग्य क्षेत्र :- आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने कहा है कि -

एकान्ते सामायिकं, निर्व्याक्षेपे वनेषु वास्तुषू च।
चैत्यालयेषु वापि च, परिचेतव्यं प्रसन्नधिया॥ 99॥

- रत्नकरण्डक

अर्थात् एकान्त क्षेत्र जो कि बाधारहित (कोलाहल, सांसारिक विषयों से रहित) वन, गृह या चैत्यालय रूप हो ऐसे क्षेत्र पर प्रसन्न चित्त के साथ सामायिक बढ़ाना चाहिए क्योंकि इसके बिना ध्यानाभ्यास का होना प्रायः असम्भव होगा। परन्तु सुदर्शन मुनीश्वरादि जैसी अभ्यस्त आत्माएँ किसी भी बाधित स्थल में भी ध्यान लीनता को प्राप्त कर सकती हैं।

सुयोग्य काल :- संध्या या सन्धिकाल जिसमें सुषुम्णा नाड़ी (सूर्य और चन्द्र दोनों स्वर रूप) चले ऐसा सुबह, मध्यान्ह और सायं काल ध्यान के लिए उपयुक्त काल समझना चाहिए। ऐसे काल में ध्यान की एकाग्रता व समता रूप सामायिक सहजता से वृद्धि को प्राप्त होती है।

सुयोग्य भाव :- ''समता सर्व भूतेषु, संयमे शुभ भावना।
आर्त्त, रौद्र परित्यागस् तद्धि सामायिकं मतं॥''

अर्थात् सब जीवों में राग-द्वेष रहित साम्य-परिणामों का होना, संयम-मय अर्थात् प्राणियों की रक्षा करते हुए 25, 16 आदि सत्तर

प्रकार की भावनाएँ चिन्तवन में लाना और आर्त्त तथा रौद्र ध्यानों का विसर्जन (त्याग) करना; साथ ही आज्ञा-विचय, अपाय-विचय, विपाक-विचय और संस्थान विचय रूप धर्म ध्यान का चिंतवन-मन्थन अपनी आत्मा में करते हुए एकाग्रता को प्राप्त कर लेना सुयोग्य भाव कहलाता है।

आत्मा में अनादि काल से विषय-कषायों के पनाले बह रहे हैं जिनकी वासना से मन को स्थिर बनाना और धर्मध्यान की ओर आकृष्ट करना प्रत्येक आत्मा के वश की बात नहीं है लेकिन जो व्यक्ति वानर जैसे चंचल जीवन या मन रूपी भूत को दान, पूजादिक धार्मिक कार्यों में अनुरक्त करता है और कोई विशेष भव्य-आत्मा पंचेन्द्रियों के झरोखों से आने वाले इन्द्रिय-भोग-विषयों की वायु को रोककर कछुये के सदृश अपने इंद्रिय व्यापार को विराम देकर यम, नियम, आसन आदि के साथ सुयोग्य, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावों के साथ ध्यान में लीन होता है तब वह निस्तरंग जल में मुख दिखने के सदृश अपनी आत्मा में अपनी आत्मा का दर्शन करने लग जाता है।

सारे जगत् में भागते मन से न तो ध्यान हो सकता है और न ही कर्म रूपी ईंधन को जलाया जा सकता है। परिग्रह के ममत्व से ध्यान की ऊर्जा बहिर्गामिनी होती है। काम वासना से ऊर्जा अधोगामिनी होती है और सम्यक् ध्यान से ऊर्जा ऊर्ध्वगामिनी होती है। जगत् की ओर भागनी वाली ऊर्जा ने आज तक हमारे अष्ट कर्मों को नहीं जला पाया जैसे कि सूर्य की किरणें सभी ओर फैल रही हों तो भारी गर्मी में भी धूप में पड़े कागज को वे नहीं जला पातीं लेकिन जब दूरबीन (लैन्स) से किरणों को केन्द्रित करके एक स्थान पर छोड़ते हैं तो कागज जल उठता है वैसे ही सम्यक् (समीचीन) शुक्ल-ध्यान से कर्मों रूपी ईंधन जल जाता है और आत्मा केवलज्ञानी परमात्मा व सिद्ध बन मोक्ष-अवस्था पाकर अनन्त काल के लिए अनन्त ज्ञानादि गुणों से सम्पन्न हो लोक-शिखर पर विराजमान हो जाता है।

इत्यलं।

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ क्र.
दो शब्द	v
मन्तव्य	vi
एक अनुपम कृति	ix
सम्यक्-ध्यान व ध्यान की प्रक्रिया	xi
मंगलाचरण	1
संसार का लक्षण	
मोक्ष का स्वरूप	
धर्म का आधार दया	2
लक्ष्य और सोपान	
ध्यान साधना व चिन्तवन	
ध्यान की अवस्थायें	6
ध्यान के योग्य सामग्री	
ध्यान के योग्य आसन	8
ध्यान के योग्य आहार	
ध्यान में बाधक तत्व	9
साधक को लाभ/ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन	
ध्यान सुयोग्य विधि व प्रक्रिया	
ध्येय द्रव्य व साधन द्रव्य	11
ध्यान हेतु क्षेत्र	
ध्यान हेतु काल	

सम्यक्-ध्यान-शतक

मंगलाचरण

1. **सिद्ध-देव जिन श्रेष्ठ हैं, परमेष्ठी-पद रूप।**
नमता सम्यक्-ध्यान में, बनूँ आप्त-अनुरूप॥

सिद्ध-देव जो श्रेष्ठ जिनवर हैं वे परमेष्ठी-पद में स्थित हैं उन्हें मैं समीचीन-ध्यान में नमन करता हूँ जिसके फलस्वरूप मैं भी उनके समान सिद्ध-अवस्था को प्राप्त कर सकूँ।

भूमिका

2. **पर-पदार्थ संयोग से, कर्म-बंध संसार।**
भोग-तजे चिंता मिटे, ध्यान-करें भव-पार॥

आत्मा से भिन्न पर-पदार्थों के मिलने पर उनमें आसक्ति होने से कर्मों का (पापों का) बंध होता है जिससे संसार में परिभ्रमण होता है और सांसारिक विषय-भोगों के त्याग कर देने पर चिंताएँ समाप्त हो जाती हैं जिसके फलस्वरूप सम्यक्ध्यान प्रकट होता है अंत में आत्मा संसार रूपी समुद्र से पार हो जाती है अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लेती है।

संसार का लक्षण

3. **कर्म-बंध गति आगति, होते जिसमें काम।**
चारों गतियों में भ्रमण, जिसका भव है नाम॥

जिसमें कर्मों का बंध, जन्म-मरण और देव, मनुष्य, नरक तथा तिर्यंच गति में भ्रमण चलता रहता है उसका नाम संसार है।

मोक्ष का स्वरूप

4. **सर्व-कर्म का नाश जब, जहाँ होय वह मोक्ष।**
निर्ग्रन्थों को प्राप्त हो, सिद्ध बनाता मोक्ष॥

जब निर्ग्रन्थ-मुनियों के जहाँ सभी अष्टकर्मों का क्षय होता है वह मोक्ष कहलाता है, यह मोक्ष सिद्ध-परमात्मा बना देता है।

भव्य का लक्षण

5. **रत्नत्रय-मय मोक्ष-मग, पाता है वह भव्य।**
मोक्ष-मार्ग अरु मोक्ष को, पाता नहीं अभव्य॥

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित रूप रत्नत्रयमय मोक्षमार्ग को जो प्राप्त कर सकता है वह भव्य जीव कहलाता है तथा मोक्षमार्ग और मोक्ष को जो प्राप्त नहीं कर सकता वह अभव्य जीव कहलाता है।

धर्माधार दया

6. **वस्तु-स्वभावरु धर्मदश, रत्नत्रय हैं धर्म।**
दया-धर्म आधार है, जिसके बिना अधर्म॥

वस्तु-स्वभाव, दसधर्म, रत्नत्रय और दया ये धर्म कहे गये हैं जिनमें दया-धर्म के बिना सभी अधर्म जानना चाहिए।

लक्ष्य और सोपान

7. **वस्तु-स्वभाव सु-लक्ष्य हो, सच्चा-सौख्य स्वरूप।**
दया आदि सोपान हैं, शिव-मंजिल अनुरूप॥

वस्तु-स्वभाव हमारा उत्तम लक्ष्य है वह सच्चेसुख स्वरूप माना गया है। दया, रत्नत्रय और दसधर्म ये वस्तु-स्वभाव रूप मोक्ष-मंजिल की सीढ़ियाँ कही गई हैं।

विशेष: क्रोध का अभाव रूप परिणाम क्षमाधर्म कहलाता है, मान का अभाव या मृदुता का भाव मार्दवधर्म कहलाता है, मायाचार का अभाव या सरलता रूपभाव आर्जवधर्म कहलाता है, निर्लोभता या पवित्रता का नाम शौचधर्म कहलाता है, अहितकर-वचनों का त्याग या सज्जनों से हितकर-वचन बोलना सत्यधर्म कहलाता है, इन्द्रियों को पाप-कार्य से बचाना संयमधर्म कहलाता है, कर्म-क्षय के लिए उपवासादि अनुष्ठान तप-धर्म कहलाता है। संयत लोगों के लिए रत्नत्रयपालन का उपदेश, नियम देने रूप मुनियों का त्यागधर्म कहलाता है, निजात्मा के अलावा परमाणुमात्र भी पर, वस्तु में मोह नहीं होना आकिञ्चन्यधर्म कहलाता है और सर्व महिलाओं से वैराग्य-भाव तथा आत्मलीनता रूप परिणाम का होना ब्रह्मचर्यधर्म कहलाता है। ये सभी दशों धर्म मोक्ष-प्राप्ति की भावना से पालन किए जाते हैं, अत: ''उत्तम'' इस विशेषण से युक्त होते हैं। खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय आहारों का त्याग करना उपवास, भूख से कम खाना अवमौदर्य, कोई नियमपूर्वक आहार लेना वृत्ति-परिसंख्यान, दुग्ध या नमक आदिक का त्याग करना रसपरित्याग, एकान्त-स्थान में शय्या व आसन लगाना विविक्त-शय्यासन और समता पूर्वक कष्टों को सहन करना कायक्लेश तप कहलाता है, ऐसे ये छह बहिरंग तप हैं। तथा दोषों का परिमार्जन करना प्रायश्चित्त, वीतराग का आदर व नमनादि करना विनय, निर्ग्रन्थों की सेवा वैय्यावृत्त, आगम का

पठनादि करना स्वाध्याय, शरीरादि पर पदार्थों से निस्पृह हो परमात्मलीनता रूप रहना व्युत्सर्ग और धर्म, शुक्ल रूप परिणाम ध्यान तप कहलाता है, ऐसे ये छह अंतरंग तप हैं।

आत्महित कैसे?

8. **आतम-हित शिव-सौख्य है, आकुलता से दूर।**
रत्नत्रय से प्राप्त हो, आत्म-गुणों से पूर॥

आत्मा का हित; आत्म-गुणों से परिपूर्ण मोक्ष-सुख रूप है उस सुख में इन्द्रिय-विषयों की इच्छा रूप आकुलता नहीं होती और वह सुख रत्नत्रय रूपी मोक्षमार्ग से प्राप्त होता है।

ध्यान-साधना हेतु चिन्तवन

9. **मन यह वानर-सम कहा, बड़ी चपलता मान।**
ज्ञान, ध्यान में लीन जब, आत्मशांति सुख जान॥

अपना मन बड़ा ही चंचल बंदर सदृश मानना चाहिए। हम जब मन को एकाग्र करके ज्ञान-ध्यान में लीन हो जाते हैं तब बड़ी शान्ति व सुख की प्राप्ति होती है।

❖

10. **मनस्-भूत को धर्म में, सदा लगाना ज्ञान।**
पाप-बंध से दूर हों, पाते समता ध्यान॥

मन रूपी भूत को खाली छोड़ने की बजाय धर्म-कार्य में लगाना यह ज्ञानीपुरुष का कार्य है। जिसके फलस्वरूप हम पाप-कर्म के बंध से दूर होकर समता और ध्यान की प्राप्ति कर लेते हैं।

❖

❖

11. अक्ष-खिड़कियों से सदा, विषय-पवन का जोर।
अगर बंद हों खिड़कियाँ, निज-सुख की हो भोर॥

इन्द्रिय रूपी खिड़कियों से हमेशा आने वाली पंचेन्द्रियों के विषयों की वायु बड़ी बाधा उत्पन्न करती है। अगर इन्द्रिय रूपी खिड़कियों को बंद कर अपनी आत्मा की ओर ध्यान लगायें तो अपने आत्म-सुख की सुबह हो जावे।

❖

12. पैर व मुख अन्दर करे, कछुआ पीठ दिखाय।
बाधक से ध्यानी बचे, संयम-सुख महकाय॥

बाधक से बचने के लिए जैसे कछुआ अपनी पीठ की आड़ में पैर और मुख अन्दर की ओर सुरक्षित रख लेता है, वैसे ही ध्यानी अशुभ-कर्मों के आस्रव से बचने के लिए ध्यान व एकाग्रता की सहायता से अपनी पाँचों इन्द्रियों को अपने काबू में कर संयम और सुख की सुगंधि पाता है अर्थात् अलौकिक-सुख का अनुभव करता है।

❖

13. वायु बहती वेग से, जल में उठें तरंग।
विषयों की वायु रुके, निर्मल आत्म विरंग॥

जैसे हवा के तीव्र गति से बहने पर जल में बड़ी-बड़ी लहरें उठने लगती हैं और उस जल में हमें अपना प्रतिबिम्ब (छाया) दर्शित नहीं होता वैसे ही मोही के लिए विषय-वासना की वायु से आत्मा का दर्शन नहीं होता और जब योगी विषय-वासनामुक्त होकर या निर्मोही सांसारिक व्यवहार से दूर होकर अपनी आत्मा को ध्यान से निश्चिंत-शान्त बना लेता है तब निर्मल-विरंग आत्मा का दर्शन होता है।

❖

14. रवि-किरणें बिखरी तपें, कागज जला न देत।
काँच साथ दुर्बीन का, भष्मसात् कर देत॥

सूर्य की किरणें पूरे जग में फैल कर तपती हुई भी कागज को जला नहीं पातीं लेकिन दुर्बीन के कांच द्वारा सभी किरणों को केन्द्रित कर कागज पर स्थिर रखने से थोड़े समय में ही कागज जलकर भष्म हो जाता है।

❖

15. मन पूरे जग में फिरे, एक-जगह ना ध्यान।
केन्द्रित निज में ध्यान तब, प्रगटे केवलज्ञान॥

मानव का मन जब तक पूरे जग में भटकता रहता है तब तक एकाग्रता पूर्वक आत्मा का ध्यान संभव नहीं होता और जब उत्तम-शक्ति (वज्रवृषभनाराच संहनन) के साथ निर्ग्रन्थ बन एकाग्र होकर अपनी आत्मा पर अन्तर्मुहूर्त्त काल तक शुक्लध्यान लगाया जाता है तब घातिया-कर्मों का क्षय हो जाता है और केवलज्ञान प्रगट हो जाता है।

[वज्रवृषभनाराच संहनन, निर्ग्रन्थ, अन्तर्मुहूर्त्त, घातियाकर्म और केवलज्ञान का अर्थ देखिये अन्त में दिये शब्द कोष में।]

ध्यान की अवस्थायें

16. समता, ध्यान-समाधि वा, गुप्ति, शुद्ध-उपयोग।
निजानुभव निश्चय कहो, यथाख्यात सत्योग॥

समता, गुप्ति, शुद्धोपयोग, ध्यान- समाधि, निजानुभव, निश्चय और यथाख्यात ये सभी समीचीन-योग की वृद्धि रूप अवस्थायें हैं। (इसका वर्णन आगे किया गया है।)

ध्यान के योग्य सामग्री

17. द्रव्य, क्षेत्र, सु-काल सह, भाव जीव जब पाय।
समता ध्यानादिक मिलें, सुयोग्य वह बन जाय॥

सुयोग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव ये सभी जब जीव प्राप्त करता है तभी जीव को समता व ध्यानादिक प्राप्त होते हैं और वह मोक्षमार्ग के योग्य बन जाता है।

ध्यान हेतु द्रव्य

18. जीव-द्रव्य आधार है, ध्याता, साध्य, स्वजीव।
संहनन आदि अजीव हैं, हेतु देव, गुरु जीव॥

ध्यान के लिए जीव- द्रव्य आधार रूप माना है। ध्याता अर्थात् ध्यान करने वाला, साध्य अर्थात् जिसकी साधना करना है वह अपना जीवात्म रूप द्रव्य है और संहनन आदि अजीव-द्रव्य कहे गये हैं। इसी तरह साधन रूप वीतराग देव एवं निर्ग्रन्थ गुरु जीव-द्रव्य कहलाते हैं।

संहनन

19. वज्रवृषभनाराच यह, संहनन श्रेष्ठ सुजान।
शुभ-ध्यानी बन कर्म-क्षय, होवे मोक्ष महान॥

वज्रवृषभनाराचसंहनन ध्यान के लिए उत्तम-संहनन जानना चाहिए इसी संहनन से शुक्ल-ध्यान द्वारा कर्मों का क्षय कर आत्मा महान मोक्ष-पद को पा लेती है।

आसन

20 खड्गासनरु पद्मासन, सिद्धासन का योग।
वीरासनरु वज्रासन, ध्यानी बने अयोग॥

खड्गासन, पद्मासन, सिद्धासन, वीरासन और वज्रासन आदि से ध्यान करके ध्यानी-योगी कर्मों से मुक्त होकर योग की उपरिम व उत्कृष्ट अयोग अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

आहार

21. अशन राजसिक, तामसिक, जिसे छोड़ना श्रेष्ठ।
सात्विक, प्रासुक हो अशन, ध्यान बढ़े, वय जेष्ठ॥

राजसिक, तामसिक भोजन छोड़कर सात्विक भोजन को प्रासुक करके ग्रहण करना श्रेष्ठ कार्य है जिसके फलस्वरूप ध्यान की वृद्धि होती है और ध्यानी लम्बी उम्र का जीवन जीता है।

❖

22. नशा, आमिस, कंद तज, निशि में छोड़े भोज।
मर्यादित, शोधित-अशन, स्वस्थ-ध्यान हो रोज॥

ध्यान को चाहने वाला अगर मांस, नशीले पदार्थ, कंदमूल तथा रात्रि-भोजन छोड़कर मर्यादित व शोधन किये गये भोजन का सेवन करता है तो नित्य-प्रतिदिन स्वस्थ-ध्यान की प्राप्ति होती है।

❖

23. एक बार भोजन करे, योगी वह कहलाय।
दोय बार भोगी करे, त्रय रोगी हो जाय॥

जो चौबीस घण्टों के अंदर; दिन में एक बार भोजन करता है वह योगी कहलाता है। जो दो बार भोजन करता है वह भोगी कहलाता है तथा जो तीन बार भोजन करता है वह रोगी कहलाता है, उसे ध्यान की प्राप्ति अतिदुर्लभ है।

❖

24. अर्द्ध-उदर भोजन करे, दुगुना-जल, हो ध्यान।
तिगुना-परिश्रम जो करे, शतायु हो धीमान॥

जो योगी आधा पेट अन्न से भरकर उससे दुगुने जल का सेवन करते हुए तिगुना परिश्रम करता है अर्थात् पूर्ण दिवस निस्प्रमाद व्यतीत करता है उस योगी की उम्र शतवर्ष तक चल सकती है।

❖

25. खोवा, मेवा आदि हैं, जहाँ पदार्थ गरिष्ठ।
जो पदार्थ रुचिकर लगें, कहलाते हैं इष्ट॥

मावा और कुछ मेवे आदिक पदार्थ गरिष्ठ (भारी) पदार्थ कहलाते हैं और जो पदार्थ मन के लिए अत्यन्त प्रभावित करते हैं या जिनके बिना भोजन नहीं रुचता वे इष्ट-पदार्थ कहलाते हैं।

बाधक-तत्त्व

26. इष्ट, गरिष्ठ-पदार्थ वा, स्त्री का संसर्ग।
व्यसन सभी सद्ध्यान में, बाधा दें उपसर्ग॥

इष्ट, गरिष्ठ-पदार्थ एवं स्त्री का सम्पर्क (स्त्रियों को भी पुरुषों का सम्पर्क) तथा सप्त-व्यसन ये सभी समीचीन-ध्यान में बाधक और उपसर्ग के समान होते हैं।

साधक को लाभ

27. एकाशन उपवास हो, हल्केपन-सह ध्यान।
ना प्रमाद-निद्रा जगे, मुनि-अनुभूति सुजान॥

एकाशन एवं उपवास के दिन बहुत ही हल्केपन के साथ या निश्चिंत और निर्भार मन के साथ ध्यान सम्पन्न होता है। प्रमाद रूप निद्रा आने की संभावना नहीं होती; ऐसी मुनिजनों की अनुभूति है ऐसा जानो।

❖

28. स्पर्शन, रसना रहीं, काम-इन्द्रियाँ जान।
कामजयी के ऊर्ध्व में, वहे ऊर्जा मान॥

स्पर्शन और रसना दो इन्द्रियाँ कामेन्द्रियां हैं इन कामेन्द्रियों को जीतने वाले व्यक्ति की ऊर्जा ऊर्ध्वगति की ओर पहुँचाने वाली ऊर्ध्वगामिनी होती है, ऐसा मानना चाहिए।

ध्यान की सुयोग्य विधि व प्रक्रिया

29. ममत्व तन का त्याग हो, कायोत्सर्ग महान।
आवर्त नमन साथ हो, निषद्या सह सु-ध्यान॥

शरीर के ममत्व (एवं अन्य पदार्थों के ममत्व को) छोड़कर खड़े होकर ध्यान करना कायोत्सर्ग कहलाता है। चारों दिशाओं में तीन-तीन आर्वत करना (घड़ी के कांटे घूमने की दिशा में करमुकुल-अंजुली को घुमाते हुए) हाथ जोड़कर सिर झुकाकर नमन करना एवं दो बार गवासन में (पूर्व व उत्तर में) बैठकर नमन रूप निषद्या से प्रणाम के साथ ध्यान करना (पूर्व व उत्तर दिशि में मुखकर) यह सम्यक्ध्यान या सामायिक कहलाती है।

❖

30. नेत्र खुले ना बंद हों, नाशा-दृष्टि सुहाय।
अधो दाँत फिर ऊर्ध्व की, पंक्ति सुसौम्य कहाय॥

ध्यान करते समय अपने दोनों नेत्र न अधिक खुले हों और ना हि बंद हों बल्कि नाशा के अग्रभाग की सीध में दृष्टि बड़ी शोभनीय लगती है। दांतों की अधोपंक्तियों के सामने ऊर्ध्व दांतों की पंक्तियाँ सुन्दर सौम्य कहलाती हैं।

❖

31. सर्व अक्ष-व्यापार को, विराम योगी देत।
धीरे-धीरे श्वास-ले, ध्यान-एक कर लेत॥

सभी इन्द्रियों की क्रिया को रोक कर योगी अपनी स्वाभाविक-श्वास की गति को ध्यान में रखता हुआ ध्यान की एकाग्रता को प्राप्त कर लेता है।

❖

32. नहीं दृष्टि हो चंचला, आसन-विजयी पूर्ण।
भौतिक-साधन दूर सब, प्रकृति-साथ सम्पूर्ण॥

निश्चल (नाशाग्र) दृष्टि के साथ आसन की दृढ़ता रखते हुए योगी भौतिक-साधनों (पंखा, ए सी, कूलर आदि) से दूर रहते हुए प्रकृति के सौम्य व शांत-वातावरण में ध्यान सम्पन्न करता है।

ध्येय व साधन द्रव्य

33. शुद्ध-आत्मा ध्येय है, परमेष्ठी, नव-देव।
निमित्त-द्रव्य व तत्त्व भी, अस्तिकाय सदैव॥

शुद्ध-आत्मा ध्यान करने योग्य ध्येय-द्रव्य कहलाता है परमेष्ठी, नव-देवता, षड्द्रव्य, सप्ततत्त्व और पञ्चास्तिकाय ये ध्यान की एकाग्रता में सहायक रूप सदैव चिन्तन करने योग्य निमित्त द्रव्य कहलाते हैं।

ध्यान हेतु क्षेत्र

34. ध्यान-क्षेत्र एकान्त हो, बाधाओं से दूर।
जंगल, गृह, मंदिर रहे, प्रसन्नता से पूर॥

ध्यान का क्षेत्र एकान्त और बाधक वातावरण से रहित होना चाहिए। ऐसे ध्यान का वातावरण जंगल में, खाली घर अथवा जिनमंदिर (जिनालय) में प्राप्त होता है। ऐसे उत्तम-वातावरण में प्रसन्नता पूर्वक ध्यान सम्पन्न होता है।

ध्यान हेतु काल

35. सुबह, मध्य व शाम में, नित्य करें शुभ-ध्यान।
योग सुषुम्ना-स्वर चले, परम-शांति हो जान॥

प्रातः सूर्योदय के निकट, मध्याह्न में बारह बजे के निकट और सायंकाल में सूर्यास्त के करीब सुषुम्णा-नाड़ी-योग के काल में जब सूर्य व चन्द्र स्वर युगपत् सहज रूप से चलते हैं उस समय प्रतिदिन शुभ-ध्यान करने से परमशान्ति की प्राप्ति होती है।

❖

36. छह, चार व दोय घड़ी, सामायिक में ध्यान।
उत्तम, मध्यम व जघन, काल तीन पहचान॥

सामायिक रूपी ध्यान में छह घड़ी (दो घण्टा चौबीस मिनिट) उत्कृष्टकाल, चार घड़ी (एक घण्टा छत्तीस मिनिट) मध्यमकाल, दो घड़ी (अड़तालीस मिनिट) जघन्य काल जानना चाहिए। इन कालों में शुभ-ध्यान करने से मन अधिकाधिक एकाग्र होता चला जाता है।

ध्यान हेतु भाव

37. सब जीवों पर साम्य हो, संयम भावन नेक।
आर्त्त, रौद्र का त्याग हो, समता पूर्ण विवेक॥

जगत् के सर्व प्राणियों पर भेद-भाव या राग-द्वेष के बिना समता रहना, इन्द्रियों को पापों से बचाकर प्राणियों की रक्षा में सावधानी रखना, शुभ-भावनाओं को भाना और आर्त्त व रौद्र ध्यानों का त्याग करना यह विवेकी के सामायिक भाव रूपी सम्यक् ध्यान कहलाता है।

समता

38. ना राजा ना रंक लख, ना ही सौम्य कुरूप।
आतम इनसे भिन्न है, यति लखता सम रूप॥

मेरी दृष्टि में न कोई राजा है, न कोई गरीब है, न कोई सुन्दर है और न ही कोई कुरूप है बल्कि आत्मा इन सभी बाहरी अवस्थाओं से विलग, समान रूप से अनन्त-शक्तिवाला होता है; ऐसा वह ध्यान हेतु यत्न-पुरुषार्थ करने वाला योगी विचार करता है।

संयम

39. इन्द्रिय-विषयों में जहाँ, भोग-रुचि का त्याग।
त्रस, थावर का घात तज, तजें जगत् से राग॥

पंचेन्द्रियों के विषयों में जिस योगी के भोग करने की रुचि नहीं होती और लट, सीप आदि द्विन्द्रिय; शंख, चींटी, तिरूला, बिच्छु आदि त्रीन्द्रिय; मच्छर, मक्खी, भ्रमर आदि चतुरिन्द्रिय; तथा चूहा, मेंढक, मछली, गाय मनुष्यादि पंचेन्द्रिय ऐसे त्रस जीवों एवं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति इन स्थावर (एकेन्द्रिय) जीवों की हिंसा को छोड़कर; संसार से राग-द्वेष व मोह का जो त्याग कर देता है वह ध्यान करने योग्य सावधानी-संयमी कहा जाता है।

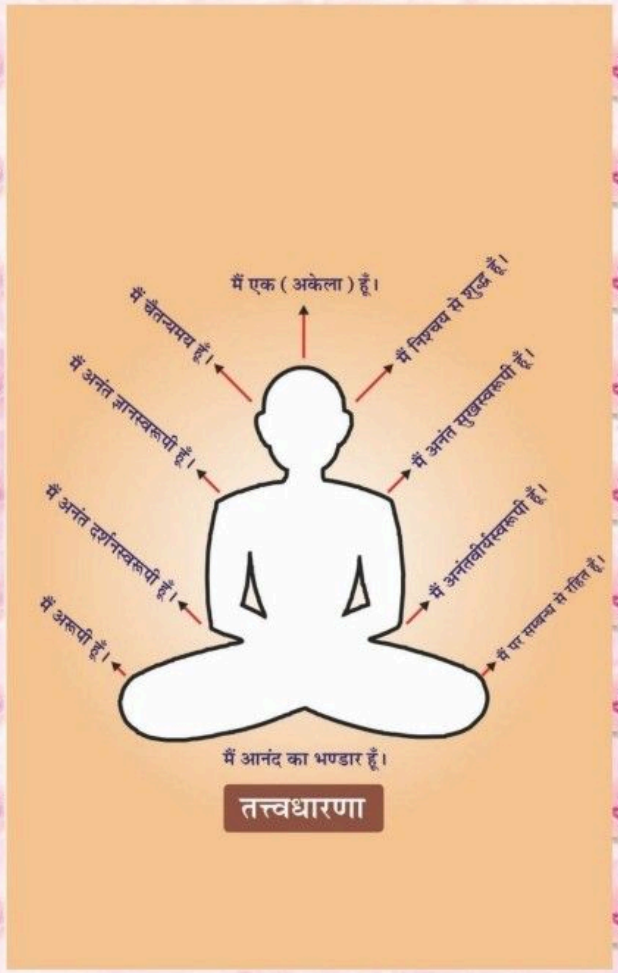

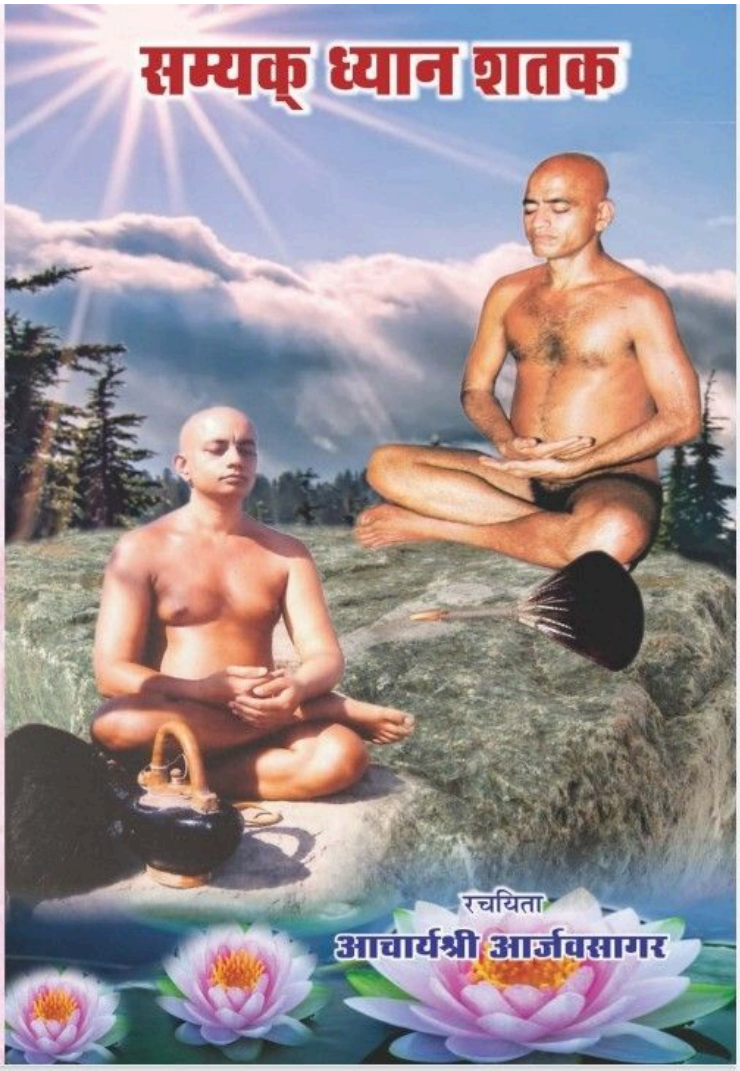

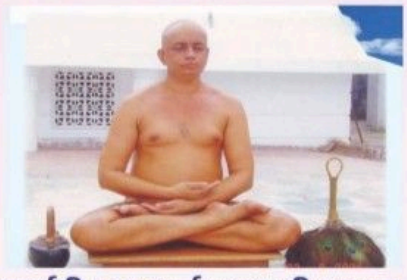

आचार्यश्री 108 आर्जवसागर जी महाराज

पूर्व नाम	- पारसचंद जैन
पिता जी	- श्री शिखरचंद जैन
माता जी	- श्रीमती मायाबाई जैन
जन्मतिथि	- ११.९.१९६७, भाद्र शु. अष्टमी
जन्म स्थल	- फुटेरा कलाँ, जिला- दमोह
बचपन बीता	- पथरिया, जिला- दमोह (म.प्र.) में
शिक्षण	- बी.ए. (प्रथम वर्ष) डिग्री कॉलेज, दमोह (म.प्र.)
ब्रह्मचर्य व्रत	- १९.१२.१९८४, अतिशय क्षेत्र, पनागर(म.प्र.)
सातवीं प्रतिमा	- १९८५, सिद्धक्षेत्र, अहारजी
क्षुल्लक दीक्षा	- ८.११.८५, सिद्धक्षेत्र, अहारजी
ऐलक दीक्षा	- १०.७.१९८७, अतिशय क्षेत्र, थूवोनजी
मुनि दीक्षा	- ३१.३.१९८८, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, महावीर जयन्ती सन् १९८८
दीक्षा गुरु	- आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज
आचार्यपद	- २५.०१.२०१५ (माघ शुक्ल षष्ठी) को (समाधि पूर्व आचार्यश्री सीमंधरसागर जी द्वारा इंदौर में)
कृतियाँ व रचनाएँ	- धर्म-भावना शतक, जैनागम-संस्कार, तीर्थोदय-काव्य, परमार्थ-साधना, बचपन का संस्कार, सम्यक्-ध्यान शतक, आर्जव-वाणी, पर्यूषण-पीयूष, आर्जव-कविताएँ, जिनवर-स्तुति, साम्य-भावना, आगम-अनुयोग, जैन शासन का हृदय, लोक कल्याण (षोडसकारण) विधान, सदाचार सूक्ति-काव्य।
पद्यानुवाद	- गोमटेशथुदि, जिनागम-संग्रह(वारसाणुवेक्खा, इष्टोपदेश, समाधितन्त्र, द्रव्य-संग्रह), तत्त्वसार एवं प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका।

भक्ष्य पदार्थों की मर्यादाएँ

क्र.	पदार्थ	शीत ऋतु अगहन से फाल्गुन	ग्रीष्म ऋतु चैत्र से आषाढ़	वर्षा ऋतु श्रावण से कार्तिक
1.	शक्कर का बूरा	1 माह	15 दिन	7 दिन
2.	दूध (दूहने के पश्चात्)	2 घड़ी	2 घड़ी	2 घड़ी
	दूध (उबालने के पश्चात्)	8 पहर	8 पहर	8 पहर
3.	दही (गर्म दूध का)	8 पहर	8 पहर	8 पहर
4.	छाछ (बिलोते समय गरम पानी डालें)	4 पहर	4 पहर	4 पहर
	छाछ (पीछे गरम पानी डालें तो)	2 घड़ी	2 घड़ी	2 घड़ी
5.	आटा (सर्व प्रकार)	7 दिन	5 दिन	3 दिन
6.	मसाले पिसे हुए	7 दिन	5 दिन	3 दिन
7.	नमक पिसा हुआ	2 घड़ी	2 घड़ी	2 घड़ी
	नमक मसाला मिला दें तो	6 घंटे	6 घंटे	6 घंटे
8.	खिचड़ी,रायता, कढ़ी, तरकारी, रोटी	2 पहर	2 पहर	2 पहर
9.	पूरी, हलवा, बड़ा आदि	4 पहर	4 पहर	4 पहर
10.	मौन वाले पकवान	8 पहर	8 पहर	8 पहर
11.	बिना पानी के पकवान	7 दिन	5 दिन	3 दिन
12.	मीठे पदार्थ मिला दही	2 घड़ी	2 घड़ी	2 घड़ी
13.	गुड़ मिला दही, छाछ और द्विदल	सर्वथा अभक्ष्य		
14.	घी, तेल एवं गुड़	जब तक स्वाद न बिगड़े		

एक घड़ी-24 मिनट की और 1 पहर-3 घंटे का होता है

साभार - आहार विधि

भक्ष्य पदार्थों की मर्यादाएँ

क्र.	पदार्थ	शीत ऋतु अगहन से फाल्गुन	ग्रीष्म ऋतु चैत्र से आषाढ़	वर्षा ऋतु श्रावण से कार्तिक
1.	शक्कर का बूरा	1 माह	15 दिन	7 दिन
2.	दूध (दूहने के पश्चात्) दूध (उबालने के पश्चात्)	2 घड़ी 8 पहर	2 घड़ी 8 पहर	2 घड़ी 8 पहर
3.	दही (गर्म दूध का)	8 पहर	8 पहर	8 पहर
4.	छाछ (बिलोते समय गरम पानी डालें) छाछ (पीछे गरम पानी डालें तो)	4 पहर 2 घड़ी	4 पहर 2 घड़ी	4 पहर 2 घड़ी
5.	आटा (सर्व प्रकार)	7 दिन	5 दिन	3 दिन
6.	मसाले पिसे हुए	7 दिन	5 दिन	3 दिन
7.	नमक पिसा हुआ नमक मसाला मिला दें तो	2 घड़ी 6 घंटे	2 घड़ी 6 घंटे	2 घड़ी 6 घंटे
8.	खिचड़ी,रायता, कढ़ी, तरकारी, रोटी	2 पहर	2 पहर	2 पहर
9.	पूरी, हलवा, बड़ा आदि	4 पहर	4 पहर	4 पहर
10.	मौन वाले पकवान	8 पहर	8 पहर	8 पहर
11.	बिना पानी के पकवान	7 दिन	5 दिन	3 दिन
12.	मीठे पदार्थ मिला दही	2 घड़ी	2 घड़ी	2 घड़ी
13.	गुड़ मिला दही, छाछ और द्विदल	सर्वथा अभक्ष्य		
14.	घी, तेल एवं गुड़	जब तक स्वाद न बिगड़े		

एक घड़ी-24 मिनट की और 1 पहर-3 घंटे का होता है

साभार - आहार विधि